धार्मिक क्षेत्र में राजनीतिक हस्ताक्षेपका आईना : 'एक साध्वी की सत्ता कथा'

डॉ. कमलेश, हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, अम्बाला छावनी।

साहित्य समाज के व्यावहारिक जीवन में प्रस्फुटित, पल्लवित एवं पुष्पित होने वाले भावों एवं विचारों की लिपिबद्ध अभिव्यक्ति है। यद्यपि यह विचार वैयक्तिक स्तर पर घटित होते हैं तथापित समूचे युग–जीवन का प्रतिनिधित्व करते हुए लोकमंगलकारी भूमिका में रहते हैं। साहित्य की यह लोकमंगलकारी चेतना साहित्यकार को न केवल जीवन के सभी पक्षों से सम्बद्ध करती है बल्कि उसे युग–परिवेश के अनुभवों से ग्रहण भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए एक व्यापक फलक भी प्रदान करती है। साहित्य में जीवन और जगत का व्यापक और विस्तृत चित्रण होता है। सम्भवतः इसी आधार पर साहित्य को जीवन की व्याख्या भी कहा गया है। जीवन के विविध पक्ष परस्पर सम्बद्ध होते हैं, इसलिए साहित्य में किसी एक पक्ष की प्रमुखता होने पर भी अन्य पक्षों का चित्रण स्वतः ही आ जाता है। राजनीतिक और धर्म ऐसे ही विशिट पक्ष हैं जो जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करने के साथ–साथ ही एक दूसरे को भी प्रभावित करते हैं। राजनीति और धर्म दोनों मानव जीवन के ऐसे विषय हैं जिन्हें कभी भी अलग नहीं किया जा सकता। ये दोनों ही अधिकतर हर वर्ग के जीवन को प्रभावित करते हैं। राजनीति राज्य व्यवस्था का संचालन करने वाली नीति है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में धर्म सदैव ही राजनीति का नियामक रहा है।

भारतीय संस्कृति का मूल आध्यात्मिकता है। इसके निर्माण में धर्म का अमिट योगदान है। धर्म संस्कृति के क्षेत्र में अपना नैतिक पक्ष उद्घाटित करता है। धर्म आध्यात्मिकता अथवा नैतिकता पर आधारित एक सर्वमान्य सिद्धान्त है। धर्म से अभिप्राय धारण करने योग्य से है। महाभारतकार के अनुसार, ''धर्म का नाम धर्म इसी लिए पड़ा कि वह सबको धारण करता है– अधोगति में जाने से बचाता है और जीवन की रक्षा करता है। धर्म ने सारी प्रजा को धरण कर रखा है, अतः जिससे धारण और पोषण सिद्ध होता हो, वही धर्म है।''[1] इस प्रकार राज्य में धर्म का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। धर्म राज्य व्यवस्था के नियन्त्रण में विशेष भूमिका निभाता है और सामाजिक व्यवस्था को जोड़ने वाला कारक है। इस प्रकार धर्म वह कारक या तत्त्व है जो सम्पूर्ण मानवीय जीवन व्यवस्था के नियामक का कार्य करता है तथा नैतिक व्यवस्था का निर्धारण करता है। धर्म का एक अर्थ धारण करने तथा नैतिक व्यवस्था से सम्बन्धित है और दूसरा अर्थ आध्यात्मिकता से सम्बन्धित है। आध्यात्मिकता से जुड़ा अर्थ कट्टरपंथी है। नैतिक व्यवस्था के रूप में धर्म केवल नियम कानूनों में बंधना नहीं बल्कि इंसान को दूसरे इंसान के साथ इंसानियत का भाव बनाए रखने में मदद करता है।

शास्त्रों, धर्म ग्रन्थों एवं महापुरुषों ने धर्म के आधार पर ही राजनीति चलाने की बात की है और राजनीति में नैतिकता एवं आदर्श का कारक धर्म को ही माना है। नैतिकता राजनीति का अनिवार्य अंग है। धर्म की महत्ता जहां मनुष्य के अपने नैतिक कर्त्तव्य में है वहीं राजनीति की आवश्यकता मनुष्य जीवन को संचालित करने में है। धर्म की भांति मनुष्य के अन्तर नैतिक बोध करवाकर उसको नैतिक तथा सामाजिक उत्कर्ष के अवसर प्रदान करवाए। धर्म के द्वारा ही राजनीति में ऐसे नैतिक आदर्शों का संचार होता है। जो उसे न्यायपूर्वक यथोचित ढंग से कार्य करने को प्रेरित करते हैं। इस दृष्टि से मानवीय जगत की अनिवार्य आवश्यकताओं में धर्म सर्वोपरि है।

प्राचीनकाल से ही राजनीति और धर्म का आपस में गहरा सम्बन्ध रहा है। राजनीति अगर किसी देश, राज्य की व्यवस्था को संचालित करने वाली शक्ति है तो धर्म इसी राजनीति का नियामक है। ''राज्य के नियमों का निर्धारण, पालन आदि धर्म पर आधारित था धर्मानुसार न्याय–वितरण करना राजा का कर्त्तव्य था।''[2]

हमारे यहां राजनीति के लिए 'राजधर्म' शब्द का प्रयोग राजनीति तथा धर्म के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध का द्योतक है। कौटिल्य ने भी राजनीति का सम्बन्ध धर्म से जोड़ते हुए कहा है कि ''राजा का कर्त्तव्य है कि वह प्रजा को धर्म मार्ग से भ्रष्ट न होने देवे।''[3] अर्थात् प्रजा को धर्म मार्ग पर प्रशस्त करने का कार्य राजनीति का था और राजनीति नियन्त्रणकर्त्ता की भूमिका में शुरू से ही रही है। महाभारत के 'शान्तिपर्व' में राजधर्म की प्रशंसा करते हुए भीष्म युधिष्ठिर से कहता है, ''सब धर्मों में राजधर्म प्रधान है अथवा सभी धर्म राजधर्म आश्रित हैं, क्योंकि इससे सभी वर्गों का प्रतिपालन होता है। राजधर्म में सारे त्याग और दीक्षाएं हैं। राजधर्म के अन्तर्गत ही सारी विधाएं और सारे लोक आते हैं।''[4]शान्तिपर्व में ही लिखा है–

यथाहिरश्मयोऽश्वस्यद्विरदस्या–कुशो यथा।

नरेन्द्र धर्म लोकस्य तथा प्रग्रहणंस्मृतम्।।[5]

अर्थात् जिस प्रकार घोड़े को लगान या भाल और हाथी को अंकुश वश में रखता है, इसी प्रकार 'राजधर्म' भी लोक को वश में रखता है। कहने का भाव आज जो कार्य 'राजनीति' का है, प्राचीनकाल में वही 'राजधर्म' का था। यह राजधर्म धर्म पर आधारित व्यवस्था थी। प्रारम्भ से ही भारतीय जीवन में धर्म सामाजिक तथा राज्य व्यवस्था का नियामक रहा है। लोक कल्याण के लिए धर्म और राजनीति एक–दूसरे के विरोधी न होकर एक–दूसरे के सहायक रहे हैं वे धर्म और राजनीतिक को एक दूसरे के पूरक मानते हैं। अच्छाई के लिए दोनों अनिवार्य हैं... ''धर्म और राजनीति एक दूसरे के पूरक हैं और वह पूरकता हर युग में रही है... धर्म दीर्घकालीन राजनीति है राजनीति अल्पकालीन धर्म है। दोनों पक्षों की खींचातानी चलती रहती है जिसमें धर्म–जाति कभी प्रबल होते हैं तो कभी राजनीति। प्रफुल्ल कोलख्यान के अनुसार, धर्म समाज में एक दृढ़ व्यवस्था की स्थापना के लिए मार्ग–दर्शक की भूमिका में रहता है और उसी व्यवस्था के अनुपालन के लिए राजनीति धर्म को नैतिकता के रूप में धारण करती है। जब तक ये दोनों एक दूसरे के पूरक की स्थिति में कार्यरत रहते हैं राज्य में एक कल्याणकारी व्यवस्था बनी रहती है परन्तु जब इन दोनों में से कोई एक पक्ष दूसरे के कार्य क्षेत्र में अनुचित हस्तक्षेप करने लगता है तो व्यवस्था में अवमूल्यन की स्थिति उत्पन्न होने लगती है।

आज राजनीति द्वारा धर्म के क्षेत्र में किए जाने वाले हस्तक्षेप ने साम्प्रदायिकता, भ्रष्टता, कर्त्तव्यहीनता तथा धार्मिक उन्माद आदि को बढ़ावा दिया है। जहां एक तरफ राजनीति ने अपने वोट बैंक और स्वार्थ लोलुपता के लिए धर्म का दुरुपयोग किया है तो वहीं दूसरी ओर धर्म ने अपने आदर्शों को छोड़कर सत्ता के गलियारों में अपना रूतबा कायम करने के लिए राजनीति की ओर मुंह फेरा है और लोक कल्याण, आदर्शों की उपेक्षा कर स्वार्थपूर्ति को अधिक महत्ता देनी शुरू की है। विजय मनोहर तिवारी ने आलोच्य उपन्यास 'एक साध्वी की सत्ता कथा'में राजनीति की इसी अवमूल्यित स्थिति का चित्रण करते हुए धार्मिक क्षेत्र में हुए राजनीतिक अवमूल्यनको यथार्थ रूप में उद्घाटित किया है। प्रस्तुत उपन्यास अतीत में हुए राजनीतिक संघर्ष से सम्बन्धित है। जिसमें सदियों से सिंहासनों को लेकर हुए षड्यन्त्रों, कुचक्रों और प्रपंचों की अनेक कथाओं के माध्यम से धर्मक्षेत्र में दिशा भ्रष्ट राजनीति की प्रपंचशीलता के आंखों देखे और अनुभव किए हुए चित्र को प्रस्तुत किया है।

धर्म और मजहब व्यक्तिगत आस्था की चीज़े हैं। उनका सत्ता की राजनीति में इस्तेमाल करना, इन्हें सत्ता का मोहरा बनाना, इनका अवमूल्यन करना, इन्हें विकृत करना धर्म विरुद्ध आचरण है। आज राजनेता अपने निजी स्वार्थ के लिए धर्म का अधार्मिक, अनैतिक उपयोग करने लगे हैं। आलोच्य उपन्यास में राजनीतिक संगठन राष्ट्रवादी मंडल आचार्य से साध्वी को सत्ता क्षेत्र में उतारने की मांग अपनी स्थिति को सुधारने के लिए करते हैं तथा साध्वी की छवि का लाभ अपने हित में करना चाहते हैं और लम्बे समय से साध्वी को राजनीति में लाना चाहते हैं। ''आचार्य ने आशीर्वाद देकर राष्ट्रवादी मंडल ने उस समूह को साध्वी को सौंप दिया था, जो विगत अनेक वर्षों से यह मांग करता आ रहा था कि साध्वी जैसे प्रखर वक्ताओं को मंडल की ध्वजा थाम कर

राष्ट्रहित में आगे आना ही चाहिए।''[6] इसके पीछे मंडल का उद्देश्य साध्वी की प्रखर बुद्धि और उज्ज्वल छवि का प्रयोग मंडल की रणनीति के लिए करना था। इसलिए साध्वी को मोहर बनकर राजनीति में लाया जाता है।

राजनेता अपने वोट बैंक को बढ़ाने के लिए धर्म गुरुओं की शरण में जाकर उनके श्रद्धालुओं को अपनी तरफ आकर्षित करके चुनाव के दिनों में उनसे लाभ प्राप्त करते हैं। धर्म गुरुओं के पास जाने का उनका उद्देश्य केवल अपने वोट बैंक को मजबूत करना है। इसके लिए वे धर्म गुरुओं तथा धार्मिक संस्थानों के कार्य करवाते हैं। आलोच्य उपन्यास में राजा अपनी छवि जनता में सुधारने के लिए आचार्य नरहरि के आश्रम के लिए विकास कार्यों की योजनाओं को लागू करता है तथा आश्रम के विकास कार्यों की घोषणा करता है– ''शासन ने अगले दिन उदयपुरम से आश्रम तक मार्ग के दोनों ओर वृहद वृक्षारोपण और पांच जलाशयों के निर्माण की घोषणा कर दी ताकि श्रद्धालुओं को पूरे मार्ग पर मनोरम दृश्य मिल सके।''[7] ये सारे कार्य आम जन को लुभाने के लिए किए गए।

अपने स्वार्थ तथा सत्ता लोभ को पूरा करने के लिए राजनीतिक पार्टियां धर्म गुरुओं से गठजोड़ करती हैं और धार्मिक गठजोड़ों को सत्ता के हसीन सपने दिखाकर उनको मोहरों की तरह प्रयोग करते हैं। धार्मिक नेता राजनीतिक चालों से अनभिज्ञ लोभवश उनको समर्थन देते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में साध्वी भी ऐसी ही राजनीतिक सबजबागों द्वारा भ्रमित होकर राष्ट्रवादी मंडल के समर्थन में आगे आती है– ''..मैं राष्ट्रवादी मंडल के प्रयासों से अभिभूत हूं... अनेक वर्षों से मंडल के मंचों पर उपस्थित रही हूं... अब मैं मंडल की ही एक सदस्य हूं...।''[8] इस प्रकार धार्मिक नेता राजनीतिक चंगुल में फंसकर अपने समथर्कों के जनाधार को भी राजनीतिक समर्थन में जोड़ देते हैं ''मेरा विचार है कि इस पवित्र कार्य में अपनी इस जनशक्ति को भी जोड़ना चाहूंगी जो आध्यात्मिक धरातल पर अनेक वर्षों से मुझसे सम्बद्ध है।''[9] इस प्रकार राजनीति में सम्पूर्ण धार्मिक शक्ति का प्रयोग अपना उल्लू सीधा करने के लिए किया जाता है।

जब व्यवस्था धर्म व राजनीति के मध्य समन्वय, समाज में समग्रता, एकता, सद्भावना तथा भाईचारा पैदा करती है तभी आदरणीय प्रतीत होती है। परन्तु जब यही व्यवस्था मानव जाति में नफरत पैदा करती एक को दूसरे के खून का प्यासा बनाती और एक समुदाय को दूसरे समुदाय का दुश्मन बनाती है तो विकृति का शिकार होती है। जनता को धर्म, जाति, समदायु का दुश्मन बनाया जा रहा है। धर्म निरपेक्षता के स्थान पर धर्म संकीर्णता से व्यवस्था ग्रस्त हो जाती है जनता को धर्म जाति के नाम पर बांटा जा रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में प्रजामंडली लोग अपने सत्ता लोभ के लिए जनता में फूट डालना चाहते हैं। ''प्रजामंडलियों ने अपने हित साधने के लिए हर कहीं पूरी व्यवस्था को दांव पर लगाया, समाज को एक सूत्र में बांधने के स्थान पर अगड़ो, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों, बहुसंख्यकों में विभाजित किया...।''[10] इस प्रकार आज राजनीति शक्ति प्राप्ति के लिए समाज में अनेकता की भावना पैदा कर रही है। इसके लिए जाति, धर्म के आधार पर भोली–भाली जनता की भावनाओं को भड़काकर उनका शोषण किया जाता है। फलतः धार्मिकता लुप्त होती जा रही है। धर्म के नाम पर झगड़े, द्वेष को भड़काया जा रहा है।

आज राजनीतिक दल साधू–सन्तों, धर्म गुरुओं को राजनीतिक जीवन की चमक–दमक, राज सिंहासन और सत्ता वैभव दिखाकर उनका उपयोग अपने हितों के लिए करते हैं। आलोच्य उपन्यास में राष्ट्रमंडल जन कल्याण की आड़ में अपनी शक्ति दृढ़ करने के लिए साध्वी को राष्ट्रवादी मंडल में शामिल होने का मानसिक रूप से तैयार करते हैं– ''मंडल में आप विधिवत पदासीन होंगी तो इस जनसमर्थन को जनादेश में परिवर्तित करना सरल होगा... रथयात्रा की पूर्णाहुति के पश्चात् आपको निर्णय ले लेना चाहिए।''[11] अतः साध्वी को राजनीति में अपना स्थान निर्धारण करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

आज सत्ता का मोह इस कदर राजनीति में व्याप्त है कि नेता धर्म के नाम पर नफरत, हिंसा फैलाने से भी नहीं चूकते। धर्म नेताओं से गुप्त संधियां करते हैं। उपन्यास में आचार्य नरहरि अपने सत्ता मोह वश राजा से मिलकर साध्वी के खिलाफ षड्यन्त्र रचता है– ''राजा और आचार्य नरहरि के मध्य विचित्र प्रकार की मौन संधि

है। आचार्य के अनुज एवं अन्य सम्बन्धियों की व्यावसायिक प्रगति में राजा का भरपूर सहयोग रहा है। योजनाओं के अन्तर्गतराजसहायता उन्हें मिली है।''[12] इस तरह धर्म तथा राजनीति का आपसी तालमेल अपने आदर्शों को भूलकर स्वार्थ तक सीमित रह जाता है।

राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा के मार्ग में जब धार्मिक आदर्श रुकावट बनने लगते हैं और धार्मिक संगठन राजनीतिक पार्टियों का सहयोग नहीं देते तो राजनीतिक लोग अपना प्रभाव जमाने के लिए उन संस्थानों में हस्तक्षेप के लिए अनुचित माध्यमों का सहारा लेते हैं। आलोच्य उपन्यास में जब साध्वी प्रजामंडल को सहयोग नहीं देती और उनकी क्रूर सत्ता के खिलाफ ब्यानबाजी करती है तो प्रजामंडली राजा उसके आश्रम की गतिविधियों पर दबाव बनाना शुरू करता है। ''आश्रम के शिक्षण संस्थानों का अन्वेषण करने लगे... आय–व्यय के पत्रक कार्यालय में प्रस्तुत करने का सूचना पत्र भेजा और आश्रम में आने वालों पर दृष्टि रखना आरम्भ कर दिया... आश्रम की परिवहन व्यवस्था को भी बाधित करने का प्रयास किया...।''[13] अतः अपने रास्ते में रोड़ा बनने वाली शक्ति को राजनीतिक पार्टियां दबाकर उनको शक्तिहीन करने के कार्य करती है।

राजनीति में षड्यन्त्र होना स्वाभाविक बात है। आज राजनीति षड्यन्त्रों का अखाड़ा बन चुकी है। सत्ता प्राप्ति के लिए अनेक चाले चली जाती हैं। साध्वी के बढ़ते प्रभाव को समाप्त करने के लिए नरहरि उनके खिलाफ षड्यन्त्र रचता है और उनके षड्यन्त्रों के बारे में शिवकेश साध्वी को सारी स्थिति बताता हुआ कहता है, ''किन्तु इतना सब कुछ करने के पश्चात् प्राप्ति क्या है... यह सब कुचक्र किसके लिए...'' साध्वी के बालसुलभ प्रश्न... सत्ता के लिए... सिंहासन के लिए... शक्ति के लिए... वही इसका अभीष्ट है...।''[14] वस्तुतः राजनीति का ध्येय मात्र सत्ता प्राप्ति ही रह गया है जिसके लिए नेता अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचते रहते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आज राजनीति अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए धार्मिक पक्ष को भी अपना शिकार बनाने से नहीं चूकती। धर्म के प्रतिनिधियों, जनता की धार्मिक भावना को बरगलाकर उसका प्रयोग अपनी हितपूर्ति के लिए करती है। इस तरह राजनीति धर्म जैसे पवित्र क्षेत्र को भी अपनी सत्ता लिप्सा को पूरा करने के लिए मोहरे के रूप में प्रयोग करती है। राजनीति धर्म की रक्षा करने की अपेक्षा अपनी शक्ति को मजबूत करने के लिए धर्म का प्रयोग अपने तरीके से करती है। धर्म भी राजनीति की चपेट में आकर दूषित हो गया है जिसका चित्रण विजय मनोहर तिवारी ने बड़ी सजीवता से आलोच्यउपन्यास में किया है।

संदर्भ –

1 महाभारत, शान्तिपर्व (गीता प्रैस, गोरखपुर, सं. 2070), पृ. 343
2 शान्ति कुमार नानूराम व्यास, रामायणकालीन समाज (सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, 1991), पृ. 254
3 उदयवीर शास्त्री (अनुवादक), कौटिल्य अर्थशास्त्र (भारत भारती प्रेस, दिल्ली, 1970), पृ. 12
4 महाभारत, शान्तिपर्व (गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2070), पृ. 61-62
5 वही, पृ. 56-57
6 विजय मोहर तिवारी, एक साध्वी की सत्ता कथा (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008), पृ. 23
7 वही, पृ. 100
8 वही, पृ. 23
9 वही, पृ. 29
10 विजय मोहर तिवारी, एक साध्वी की सत्ता कथा (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008), पृ. 47
11 वही, पृ. 57
12 वही, पृ. 115
13 वही, पृ. 97
14 वही, पृ. 104